चिरकुटचर्चासमीक्षा

(प्रथम प्रसून)

गोस्वामी श्याम मनोहर
(समीक्षक–प्रकाशक)

चिरकुटचर्चासमीक्षा

(प्रथम प्रसून)

गोस्वामी श्याम मनोहर
(समीक्षक–प्रकाशक)

६३, स्वस्तिक सोसायटी, ४था रस्ता जुहुस्कीम,
पारले (पश्चिम), मुंबई. ४०० ०५६

भूमिका

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणद्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गके प्रमाणाधारके रूपमें उनके द्वारा विरचित गम्भीर दार्शनिक चिन्तनसे प्रचुर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं. परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्यभक्तिमें पुष्टिजीवकी प्रमेयनिष्ठा भी प्रकट हो ही पाती है. उस प्रमेयनिष्ठाके अनुरूप उनके उभयात्मजों द्वारा संवारी गयी विलक्षण पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणाली भी अतिशय मनोरम है. तदुपरान्त इस भूतलपर पुष्टिभक्तके रूपमें निज पुष्टिप्रभु भगवान्के तादात्म्यको जान पाने, चाह पाने; और जी पानेकी आश्वस्तता ही ऐसे मार्गके साधकको कृतकृत्य बनानेवाली फलप्राप्ति है. यों प्रमाण प्रमेय साधन और फल चारों ही प्रकारोंकी दिव्यचतुष्टयीवाला यह मार्ग है!

इतनी सारी महनीय श्रेष्ठताके बावजूद जो आज अपने सम्प्रदायमें अधोगामिता झलकने लगी है, उसका मूल कारण इस सम्प्रदायमें गुरुपदोचित लाभपूजा पानेवाले हम गोस्वामिओंका सर्वथा उत्तरदायित्वविहीन नेतृत्व तथा स्वमार्गीय सिद्धान्तबोध और सिद्धान्तोपदेश कर पानेकी क्षमताका दारिद्र्य है!

आचार्यचरणके द्वितीय आत्मज प्रभुचरणद्वारा प्रदत्त **''भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत्''** इस गुरुके स्वरूपलक्षणका तो श्रद्धाजाड्यकी झोंकमें हमने अपने सम्प्रदायमें अतिशय महत्त्व मान लिया, पर गुरुके आचार्यचरणद्वारा उपदिष्ट **''कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरं श्रीभागवततत्त्वज्ञम्''** रूप फलमुखलक्षणकी हमने निष्ठुर उपेक्षा की है. इसीका दुष्परिणाम अब अपने भीषणतमरूपमें सामने आ गया है. पुष्टिसम्प्रदायके गोस्वामी केवल वल्लभवंशज होनेके अलावा अन्य किसी भी तरहसे, किसी व्यापारिक प्रतिष्ठानमें क्लर्क या चपरासी का काम कर पानेके भी, योग्य हों या न हों उन्हें बाल्यकालसे साक्षात् पुरुषोत्तम मान लेनेकी भ्रमणासे हम ग्रस्त हो जाते हैं. यह भ्रमणा स्वयं हमारे भीतर और हमारे अनुयायिओंके भीतर भी भयावह रूपमें ठूंस-ठूंस कर भर दी जाती है. इसके दुष्परिणामतया कई तरहके अनर्थ प्रकट हो जाते हैं. जैसा कि एक सुभाषितमें कहा गया है **''यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वम् अविवेकिता एकैकमपि अनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्!''** तदनुसार हम वार्धक्यमें भी यौवनपीड़ासे ग्रस्त

रहते हैं, भक्ति और भगवान् के नामपर बिना परिश्रमके प्राप्त होते धनसे भी सम्पन्न होते हैं, अनुयायिवर्ग द्वारा निरन्तर ''जै कृपानाथ! जै कृपानाथ!'' के भ्रामक संबोधनोंके कारण प्रभुत्वकी मनोग्रन्थिसे भी पीडित रहते हैं; और, न पुष्टिसमाजमें अपने पारम्परिक उत्तरदायित्वकी विवेकशीलता और न बाह्य समाजमें विकसित आधुनिक विवेकशीलता ही हमारे भीतर उभर पाती है. यों हम गोस्वामिओंका बहुसंख्यक समुदाय उक्त सुभाषितका जीवित उदाहरण बन गया है.

विगत ग्रीष्म ऋतुमें कईओंने मुझे सूचना दी कि 'ओरकुट' नामक वेब्-साईट्पर आपकी कड़ी आलोचना आ रही है. करनेवाले कौन हैं? यह जिज्ञासा करनेपर जो नाम और उसकी मुद्रित प्रतियां देखनेको मिली तो मुझे 'नहि रुतमनुरौति' न्यायेन मुझे वह उपेक्षणीय लगी. इधर अब ऐसे भी समाचार मिलने लगे कि इस 'ओरकुट' साईट्पर अपने समाधानियोंके बजाय अनेक गोस्वामिमहानुभाव वैष्णवोंको अपने ठाकुरजीके मनोरथोंके आमन्त्रण उनके फोटो और तदर्थ धनयाचना भी करने लगे हैं. यह मानों कम हो अतः अपनी अविवाहित प्रियतमाओंसे प्रेमालाप भी करने लगे हैं. असमर्पितत्यागके नगारे बजानेवाले होटलोंमें मिलती चाईनीज़-बर्गर थाई-बर्गर और सिज़लर जैसी अखाद्य फूड आईटम् खानेके अपने शोखका भी प्रचार खुले आम करने लगे हैं. सो मुझे लगा कि बात कुछ गंभीर मोड़ ले रही हैं. फिरभी यह तो उन-उन गोस्वामिओंका व्यक्तिगत विषय होनेसे क्यों और कैसे निरर्थक सिरफोड़ी करनी? यह सोच कर मैंने रुचि नहीं दिखायी.

बादमें इसी गुटके गोस्वामिओं तथा वैष्णवों के बीच अकस्मात् ''श्रीनाथजीका प्रसाद देवद्रव्य होता है कि नहीं?'' ऐसी चर्चा जोरशोरसे छिड़ गयी.

और लो इन्हीं गो.बा.को सम्प्रदायके सिद्धान्त परम्परा वार्तासाहित्य और श्रीगोवर्धनोद्धरणकी महत्ताकी याद सताने लगी! और फिर तो सिद्धान्तचर्चा करनेवाले वैष्णवोंको इन लोगोंमेंसे कईने डांटना-डपटना शुरु कर दिया. निरर्थक मेरा भी नाम बीचमें फंसाया गया कि मैं उन्हें बरगला रहा हूं. जबकि मैं जानता भी नहीं कि कौन-कौन इस चर्चामें भाग ले रहा है और न मेरे यहां इंटरनेट है. सुना कि पर्सनल स्क्रेपपेपरमें एक-दूसरेको सावधान भी किया गया कि वैष्णवोंके

नामसे गोस्वामी श्याम मनोहर ही 'ओरकुट'पर उधम कर रहा है. ऐसी सूचना मिलनेपर मैंने भी जानना चाहा कि आखिर मुद्दा क्या है ? अतः चल रही चर्चाकी मुद्रित प्रति मैंने भी मंगवाई और तब पढ़नेपर पता चला कि इस वेब्साईट्पर अपनी निम्नस्तरीय मानसिकता, निम्नस्तरीय स्वधर्मनिष्ठा और अपनी लाभपूजाको केवल बढ़ावा देनेको कितने घिनोने स्तरपर साम्प्रदायिक सिद्धान्तोंका विकृत स्वरूप हम वल्लभवंशज ही प्रस्तुत कर रहे हैं !

व्रजभाषाके एक भगवल्लीलागानपरक पदमें मुक्तामाल टूटने और उरोवस्त्रके चिरकुट होने का वर्णन तो मधुर माना जा सकता है; परन्तु महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणद्वारा हमारे कण्ठोंमें धारणार्थ निर्मित सिद्धान्तमुक्तावलीको तोड़ना और भक्तोंके हृदयमें उनके सेव्यप्रभु जिस भावात्मक आसनपर बिराज पायें उसे चिरकुट बनानेके षड़यन्त्र करनेवाले इन वल्लभवंशजोंको रोका नहीं गया तो, ये अपने क्षुद्र ही नहीं प्रत्युत गर्ह्य स्वार्थके वश, दिव्य मार्गका निरर्थक सर्वनाश कर देनेपर आमदा हो जायेंगे. इस लिये इनके चिथड़े हालवाली मार्गनिष्ठा और इन चिथड़े हालवाले स्वमार्गीय सिद्धान्तबोध प्रकट करनेवाली चिरकुटचर्चाको उघाड़ी पाड़ना प्रत्येक पुष्टिमार्गीयका प्रमुख कर्तव्य है. इसलिये इन गोस्वामिबालककों द्वारा चलायी जाती चर्चाको मैं 'चिरकुटचर्चा' कहना चाहता हुं.

इनके चिरकुटविधानोंकी समीक्षा तब तक निरन्तर प्रकाशित करता रहूंगा जब तक ये ओरकुटपर स्वमार्गीय जनताको बरगलाते रहेंगे !

अधिकांश इन गोस्वामिबालकोंमें मुझसे सम्बन्ध और वय में कनिष्ठ हैं. अतः अपने यहां ऐसोंको 'चि.' लिखने-कहनेकी परिपाटी है. मेरी इस समीक्षामें जो 'चि.' विशेषणका मैंने प्रयोग किया है, वह उसी परिपाटीको निभानेको है नकि इन्हें चिरकुट कहनेको ! कारण इसमें भी गम्भीर है ! और वह यह कि दिनांक १०-१३ जनवरी ९२में इनके अघोषित प्रतिनिधिको जब पक्षग्रहणकी प्रक्रियामें फंस जानेपर स्वीकारना पड़ा कि भगवत्सेवार्थ जनतासे धनयाचना करनेवाला अपवित्र देवलक होता है. तब जुनागढ़के प्रवचनमें उन्होंने कहा कि उत्तमकक्षाका अधिकारी तनुवित्तजा सेवा करता हो पर एतावता जघन्यकक्षाका अधिकारी भगवान्की सेवाके नामपर दूसरोंसे धन न मांगे तो क्या दरियामें डूब कर मर जाये ?

मेरे पास उस प्रवचनकी टेप सुरक्षित है. अतः मुझे भय होता है कि सिद्धान्तका सच्चा स्वरूप इन्हें समझानेपर अपने-आपको सुधारनेके बजाय ये गोस्वामिबालक कहीं दरियामें डूब कर मर जानेको उद्यत न हो जायें ! वर्ना निरर्थक दशरात्रिके आशौच पालनेका दण्ड मुझे भुगतना पड़ेगा ! इसलिये इन्हें 'चिरं जीव ह्न चिरं जीव !' आशिर्वाद देते रहनेको ही इनके नामके साथ 'चि.' विशेषण लगाना मुझे आवश्यक लगता है. इति शम्.

रक्षापूर्णिमा, वि.सं.२०६७ ***गोस्वामी श्याम मनोहर***

विधान (१)

MANMATH RAI Aug 11

PLZ DON'T LISTEN & GET TRAPPED IN THIS KIND OF RUMOURS...(BULL-SHIT!) NO MATTER WHAT...WE SHOULD ALWAYS & ALWAYS SHOULD HAVE SHRINATHJI'S PRASHAAD!!! LET SOME (CONFUSED & SHRUD)

समीक्षा

चि.मन्मथराय बावाने इस चर्चामें सहभागी होनेको प्रथम वाचार्पण ही गालीगलौचके साथ शुरु कर उनकी असभ्य वाणी और मानसिकता परिचय दे दिया! 'बुलशिट्' गालीके अर्थ अंग्रेज़ी डिक्शनरीमें **"Vulgar Slang, Foolish, uninformed, pretentious, or exaggerated talk, nonsense"** दिये गये हैं. वैसे अंग्रेज़ी भाषामें 'बुल' शब्द गोवंशजात बैलसे अधिक घोड़ा हाथी आदि अनेक प्राणिओंके नरके वाचकतया प्रयुक्त होता है, अतः आशा करनी चाहिये कि गोवंशीय वृषभके गोबरके अर्थमें तो चि.मन्मथ बावाने गाली नहीं दी होगी. क्योंकि पूर्वाचार्योंद्वारा स्वीकृत शास्त्रोंमें वह तो चौरी आदि करनेके अनेक छोटेमोटे पापकृत्योंके प्रायश्चित्तार्थ पञ्चगव्यतया शोधक पदार्थ माना गया है. उसे ही गाली मान लेनेपर तो चि.बावाका भारतीय संस्कृति और धर्म के बजाय पश्चिमी सभ्यता और धर्म से हृदयके ग्रस्त होनेका चौर भी पकड़ा जायेगा! खैर किसी भी सूरतमें गालीगलौच भी कोई वैसी बुरी बात नहीं, पर स्वयं यदि कोई उसके बिना बात शुरु न कर पाता हो तो, फिर दूसरा भी यदि जवाबमें गाली देने लगे तब उसका बुरा माननेका अधिकार छिन जाता है.

PEOPLE SAY WHATEVER THEY WANT TO....BUT IF U'R A PUSHTIMARGIYA VALLABHIYA VAISHNAV....YOU SHOULD ALWAYS KEEP VISITING NATHDWARA,VRAJ & SHOULD ALWAYS HAVE SHRIJI'S PRASAAD, WHENEVER U GET THAT FORTUNATE OPPORTUNITIY...

जो श्रीनाथजीका प्रसाद नहीं लेता है उससे बड़ा पापी और बहिर्मुख कोई नहीं है! **I REPEAT WITH A PROUD ALLOVER...**जो श्रीनाथजीका प्रसाद नहीं लेता है उससे बड़ा पापी और बहिर्मुख कोई नहीं है!

दूसरी बात चि.बावाने यह कही है कि कुछ भ्रान्त और धूर्त **(CONFUSED & SHRUD)** लोग देवद्रव्य खानेकी मनाई करते भी हों तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिये. इस वाक्यका हार्दिक अभिप्राय समझनेमें थोड़ी कठिनाई सामने आ रही हैं. चि.मन्मथ बावा अपने औरस पिता गोस्वामी नीरजकुमार और औरस पितामह गोस्वामी माधवरायजी को यहां 'भ्रान्त और धूर्त' कह रहे हैं या धर्मपितामह गोस्वामी दीक्षितजीको!

क्योंकि इन तीनोंने भी देवद्रव्य न खानेकी बात स्वीकारी है. प्रथम दोनोंनें संयुक्तघोषणापत्रपर (द्रष्ट. : आधुनिक न्यायप्रणाली और पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणाली का आपसी टकराव पृ.१३०-१३२) हस्ताक्षर करके. और गोस्वामी दीक्षितजी महाराजने अपने 'मुंबईसमाचार' गुजराती दैनिक और श्रीवल्लभविज्ञान में प्रकाशित करवाये लेखोंमें जिनका अंश (वहीं आ.न्या.प्र.पु.सा.प्र.ट.पृ.११९) अमृतवचनावलीमें संकलित किया गया है.

अपने पूर्वजोंको चि.मन्मथ बावा क्यों भ्रान्त और धूर्त मान रहे हैं उसका वास्तविक कारण तो वे स्वयं खुल कर बोले तभी प्रकट हो सकता है. उस बीच

प्रस्तुत चिरकुटचर्चामें उनकी बातोंको पढ़नेपर उभरते अनुमानके आधारपर ऐसी सम्भावना प्रबल लगती है :

१.विगत सौ वर्षमें चि.मन्मथ बावाके बराबर स्वमार्गीय सिद्धान्तग्रन्थोंका अध्ययन और कोई कर नहीं पाया ऐसी चि.मन्मथ बावाकी मूढ़ताभरी मान्यता होनेसे इनके औरस पिता-पितामहको ये भ्रान्त और धूर्त मानते होंगे.

२.क्योंकि अन्य किसी तरहकी आधुनिक शिक्षाप्रणाली शायद न ले पानेकी भी लाचारी होगी. और व्यावसायिक हवेली चलाये बिना शोखमोज मारने और पेट भरने को धन जुटानेका दूसरा उपाय जानते न होनेकी भी मूलभूत अयोग्यताके कारण, जो वापीमें हवेली खोलनी पड़ी है, उसमें भगवत्सेवाका सिद्धान्तशुद्ध प्रकार व्यवधान खड़ा करता होना चाहिये. अतः अपने पूर्वजोंको भ्रान्त और धूर्त माननेके अलावा चि.मन्मथ बावाके पास अब कोई चारा बच नहीं गया लगता है! अतएव ग्रन्थोपदिष्ट द्व तनुवित्तजाकी पुष्टिमार्गीय क्रिया, निजघरमें भावसंगोपनके साथ भगवत्सेवा करनेका पुष्टिमार्गीय भाव तथा भगवान्में अपना चित्त लगानेके भक्तिमार्गीय उपायतया भगवत्सेवा निभानेके बजाय गामको बेवकूफ बना कर धन ऐंठनेका सरलतम धंधा हवेली चलाना होनेके कारण भी. और अपने आचार्यवंशज होनेके आत्मगौरवके भी नष्ट हो जानेके कारण भी. अपने इन पूर्वजोंको गाली देनेके अलावा अब कोई उपाय चि.मन्मथ बावाके पास रह नहीं गया है!

इन दोनोंमें से प्रथम कारणको उचित माननेमें कठिनाई जो सामने आती है वह इस समीक्षामालाके एक-एक प्रसून पुष्प जैसे प्रकट होते जायेंगे जायेंगे वैसे स्वतः ही चि.मन्मथ बावाके शास्त्राध्ययन या सिद्धान्तबोध का कच्चा चिठ्ठा सबके सामने खुल ही जायेगा. अर्थात् चि.मन्मथ बावाका अपने इन पूर्वजोंकी तुलनामें ग्रन्थाध्ययन कितना या कैसा है!

यह बात भी मैं एक नादान बालककी निन्दा करनेके लिये क्रोध या द्वेष के मनोभाववश नहीं प्रत्युत अपने परिवारके एक लाचार बालकके गुरुपदोचित अध्ययन करनेसे वंचित रह जानेके बावजूद स्वमार्गीय सिद्धान्तके बारेमें अनर्गल

यद्वा-तद्वा प्रलाप करनेकी मूढचेष्टाको देख कर हृदयमें पनपे पारिवारिक अपराधबोधके भावके कारण पनपी आत्मग्लानि और अपराधस्वीकृति को केवल मुखरित करनेके लिये कर रहा हुं!

अतः रह जाती है बात दूसरे कारणकी. इसमें इस अपठित बालकके प्रति उसके अपठित होने या अधिकाधिक अर्धपठित होने, जो और भी अधिक हानिकर होता है, के तथ्यके प्रति पूर्ण सहानुभूति रखनेके बावजूद कुछ स्पष्टीकरण इस समीक्षामें यहां देने ही पड़ेंगे.

हाल ही में ''मन्मथरायके कुंवर लाडिलेश (प्राकट्यवार्ता)'' देखनेको मिली उसमें वापीमें खोली गयी व्यावसायिक हवेलीमें अपने धंधेको धकाधूम चलानेको पधराये ठाकुरजीके श्रीमाधव भट्ट काश्मिरीके सेव्य होनेका उल्लेख किया गया है. इस लिये झूटमूटकी प्राकट्यवार्ता लिखवायी है : कैसे सपनेमें ठाकुरजीने स्वयंके बारेमें जताया, कैसे ये ठाकुरजी और महाप्रभुजी के हस्ताक्षर वहां जतिपुरामें बिराज रहे थे; और कैसे वहांसे इनके पितामह पधरा कर लाये आदि-आदि. ये सारी मनघड़ंत बातें हैं. और लूला बचावकी कैसे वह बात भाईओंके आपसी कलहके कारण छिपायी रखी गयी सो इतने वर्षों तक प्रकट न हो पायी और कैसे अचानक सारे चमत्कार प्रकट हो गये आदि-आदि (दृष्ट. : पृ.५-२२). इस मूढ बालकको इतना भी होश नहीं कि वस्तुतः यदि संयुक्त परिवारके ये निधिस्वरूप हों तो और संयुक्तपरिवारके ही जतिपुराके घरमें बिराजे हुवे थे तो वहांसे चुपचाप ला कर छुपा रखनेसे इस बेवकूफ व्यक्तिपर मुकदमा दायर किया जा सकता है कि या तो 'कुंवरलाडिलेश' नामसे मिथ्याख्यात स्वरूपको तुरन्त ही संयुक्तपरिवारके कर्ताके हवाले सोंपो अन्यथा कोर्टरिसीवर भी वापीकी हवेलीपर बिठाया जा सकता है. इस कार्यकेलिये संयुक्तपरिवारके पुरुषसदस्य ही नहीं अपितु जिन अपने परिवारकी बहन-बेटिओंका हक पचानेके षडयन्त्र यह परिवार कर रहा वे भी सीधीसादी नोटिस दे कर यह मुद्दा कोर्टमें उठा सकती हैं. और तब इस प्राकट्यवार्ताको झूंट कहनेपर तो हवेलीव्यवसायमें लाभके बजाय निवेशित यह पूंजी भी खो देनी पड़ेगी!

वैसे मैंने किसीके मुंहसे ऐसा सुना कि एक दिन मुंबईके बड़े मन्दिरके बड़े मुखियाजीको मन्दिरमें अपरसमें नहानेके बाद सहसा ट्रस्टीने बज़ारके भुजेना खाते और चाय पीते रंगे हाथ पकड़ लिया ! बिचारे ! क्या जवाब देते सो अपना पिण्ड छुड़ानेको बोले ''नि.ली.श्रीमुकुन्दरायजी हमको आज्ञा कर गये हैं कि ठाकुरजीको परिश्रम मत देना बज़ारके भी चाय-नाश्ता खा कर मुस्तैदीके साथ सेवा करना !''

स्वाभाविक है कौन ट्रस्टी नि.ली.महाराजश्रीसे पूछने ऊपर जायेगा कि आपने ऐसी आज्ञा सचमुचमें दी कि नहीं ?

वही तकनिक इस प्राकट्यवार्तामें नि.ली.माधवरायजीके नामपर चढ़ा कर अपनायी गयी है, उनके दिवंगत होनेके बाद ! अतः या तो अपर्याप्त मनोमन्थनके कारण अथवा बड़े मन्दिरके बाजारु चाय-नाश्ता करनेवाले मुखियाजीको गुरुभेंटका नारियल चढ़ा कर यह प्राकट्यवार्ता प्रकट की गयी है !

क्योंकि मैं स्वयं जतिपुराके मन्दिरमें सन ५५ से लेकर, जब वहां सेवाप्रकार चलता था, करीब छह बार गया था छह-सात दिनोंतक उस मन्दिरमें रहा भी था और सेवामें भी प्रतिदिन नहाता था. प्राकट्यवार्तामें प्रकाशित चित्रके अनुरूप एक भी स्वरूप वहां बिराजता नहीं था. चि.मन्मथ बावाके औरस पितामहके साथ भी, चाचा-भतीजेसे कहीं अधिक दो मित्रोंकी तरह, मेरा दिनरातका उठना-बैठना भी अपने बड़े मन्दिरके ३५ वर्षके निवासके दरमियान था ही. कभी ऐसे कोई ठाकुरजीके उनके पास होनेकी बात मैंने देखी-सुनी नहीं थी.

हां एक बार मेरी उपस्थितिमें चेन्नाईवाले बड़ेकाकाजीको इनके पितामहने पूछा था कि ''कोई स्वरूप महाप्रभुजी या गुसांईजी निधि हैं कि नहीं कैसे पहचानना ?'' और बड़ेकाकाजीके पास ऐसा कोई प्राचीन स्वरूप हो तो माधवकाकाने मांगा भी था. बड़ेकाकाजीने तब कहा कि उनके पास निधिस्वरूप तो नहीं है परन्तु उतने प्राचीन स्वरूप अवश्य हैं सो पधराये जा सकते है.

समझनेकी बात है कि महाप्रभुजीके ऐसे निधिस्वरूप यदि गोवर्धनेशजी महाराजके समयसे परिवारमें बिराजते होते तो तीन-चार पीढ़ी तक माधवकाकासे

बड़े भाई कितने थे, उन्हें पता न होना अथवा पता होनेपर उन्हें जतिपुराके उजड़े घरमें उन्हें बिराजे रहने देना इस प्राकट्यवार्ताकी सबसे लचर अविश्वसनीय बात है. ऐसा सम्भव ही कैसे हो सकता है ? जबकि गुसांइजीके निधिस्वरूप नागरजी, छोटे मदनमोहनजी, और नवनीतप्रियाजी यहां बम्बई पधरा लिये गये थे !

तिसपर भी चि.मन्मथ बावाकी यह तीसमारखानी कि सौ वर्षके भीतर हुवे किन्हीं गोस्वामी बालकोंके वचन वे पुष्टिमार्गके बारेमें प्रमाण नहीं मानते ! तो क्या वापीमें भक्तिके गर्हित व्यवसाय करनेके लिये ही अपने पिता पितामह प्रपितामह या वृद्धप्रपितामहके तथाकथित

वचन कि ''यह स्वरूप महाप्रभुजीके निधि हैं और काकावल्लभजीके दो गुप्त निधिस्वरूपोंमेंसे एक हैं'' अब प्रमाणतया प्रस्तुत किये जा रहे हैं ? अब थूंका हुवा चाटने जैसी बात दूसरा कोई कैसे मान पायेगा ? अतः दोमेंसे एक बात तो इस नादान गु.बा.को छोड़नी ही पड़ेगी.

जबकि संयुक्तघोषणापत्रमें देवद्रव्य तनुवित्तजा गृहसेवा आदिके मुद्दोंपर अपने हस्ताक्षर करनेवालेको चि.मन्मथ बावा भ्रान्त और धूर्त मान रहे हैं, तो ठाकुरजीके भी महाप्रभुके निधिस्वरूप होनेके उनके वचन क्या भ्रान्तिपूर्ण या धूर्ततापूर्ण नहीं सिद्ध होंगे ?

इससे लगता है कि यह सारा दुःख पेटभराईके धंधेमें आड़े आते सिद्धान्तोंके साथ लुकाछिपी खेलनेका ही है.

एक सम्भावना यह भी सोची जा सकती है कि चि.मन्मथ बावा अपने औरस पिता या पितामह को भ्रान्त और धूर्त नहीं कहना चाहते होंगे. पर देवद्रव्य न खाने और अपने ही घरमें भगवत्सेवा करनेके उपदेश प्रसिद्ध करनेके कारण धर्मपितामह गोस्वामी दीक्षितजी महाराजको भ्रान्त और धूर्त कहना चाहते हैं !

तब तो और अनर्थकी पराकाष्ठा हो गयी! क्योंकि अब अपने पितामहके रूपमें चि.मन्मथ बावा गोस्वामी दीक्षितजी (मेरे पितृचरण) का ही नाम आजकल प्रसिद्ध करवा रहे हैं!

ऐसी स्थितिमें गोस्वामी दीक्षितजीकी सम्पत्तिरूप 'बुलशिट' खा जानेके लिये ही यह नाम जोड़ा हुवा होना चाहिये! वैसे तो मेरे छोटे भाईने इन्हें गोद लिया है, इसलिये चि.मन्मथ बावा अपने नामके साथ मेरे पितृचरणका नाम अपने पितामहके रूपमें जोड़े उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं. पर मेरे पितृचरणके सिद्धान्तोद्गारको ये हृदयसे 'बुलशिट' मानते हों तो स्वयंके इनके मुखसे निकली 'बुलशिट' दोबारा इन्हींके मुखमें घुस गयी कि नहीं?

मैं तो कहता हुं अब भी समय है कि उस बुलशिटको अपनी सम्पत्तिलालसापर काबू पा कर थूंक दो! यदि मेरे पितृचरणके विधानको दिलसे पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तके विपरीत मानते हौ तो! वर्ना वह बुलशिट यदि पेटमें भीतर उतर गयी तो शरीरका भाग बन जानेपर तो 'मन्मथराय' नामके बजाय 'बुलशिण्मथराय' नाम ही चरितार्थ हो जायेगा! खैर जब तक यह नादान बालक उसे थूंकनेकी सिद्धान्तनिष्ठा प्रकट नहीं करता तब तक मैं तो अब इन्हें 'बुलशिण्मथराय' ही मानता रहुंगा!

६० के दशकमें गोस्वामितिलकायित श्रीगोविन्दलालजी महाराजकी अपेक्षाके अनुसार अपरस काढ़नेकी टेम्पल बोर्डने बेरुखी दिखायी थी. सो तदर्थ गोस्वामिपरिषद्की उस बैठकमें सभी गोस्वामिओंने श्रीजीके प्रसाद न लेनेका घोषणापत्र जारी किया था. किसी वैष्णवने, परन्तु, वह बात मानी ही नहीं. क्योंकि बहोत सारी वैष्णवजनता अपरस छू जानेके बहानेको गो.बा.ओंके अधिकारकी लड़ाई मान रही थी. उस सभामें चि.मन्मथ बावाके औरस पितामह माधवकाकाने भी गोस्वामिपरिषद्की इस निषेधाज्ञापर हस्ताक्षर किये थे. यह तो केवल आंखो देखी बात ही नहीं है परन्तु उस मीटींगके समाचारोंकी कटिंग्स् भी उपलब्ध है.

खैर, सचमुचमें अपरस छू गयी हो कि नहीं पर, जैसे कि चि.मन्मथ बावा उसे महाप्रभुजीके कालसे देवद्वार माननेके कारण देवद्रव्य खानेका शास्त्रोक्त अपराध वहां नहीं मानते, वैसे ही अपरस भी

तो पुष्टिमार्गके बजाय शास्त्रोक्त मर्यादाका विषय है, उसके कारण श्रीजीके सामने धरी सामग्री अग्राह्य क्यों मान ली गयी?

इसके अलावा मेरे पास एक पास एक नहीं तीन-चार थर्मामीटर ऐसे हैं जिनसे सौ वर्ष पुराने बालकोंके ही वचनको प्रमाण माननेवाले इस मूढ़ बालककी वास्तविक सिद्धान्तनिष्ठा और सौ वर्षपूर्व हुवे पूर्वाचार्योंके वचनोंको स्वीकारनेकी निष्ठाके बुखारका पारा, नापनेपर, अभी प्रकट हो जायेगा. दायीके आगे पेट छिपाया नहीं जा सकेगा!

हमारे पितामह गो.श्रीगोकुलनाथजी महाराज भी जिनकी निधिस्वरूपविषयक जानकारीको प्रामाणिक मानते थे ऐसे उनसे वयसा ४१ वर्ष ज्येष्ठ मथुराके श्रीरमणलालजी महाराज, जो वि.सं.१९०४ में जनमें थे, उन्होंने श्रीमुरलीधरजी, श्रीमाधौरायजी, श्रीलालमणिजी, तथा श्रीरणछोड़जी महाराजके श्रीमुखके वचनामृतके आधारपर 'पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप दर्पण' प्रकट किया है. अर्थात् सौ वर्षसे ऊपरके हैं. वे कहते सुस्पष्ट शब्दोंमें –

> **''अब गांव गोपालपुरमें श्रीमदनमोहनजी महाप्रभुजीके सेव्य सो जगतानन्दके श्रीठाकुरजी हैं सों श्रीद्वारकेशजी महाराजके मांथे बिराजत हैं. छोटे श्रीमदनमोहनजी श्रीगोकुलनाथजीके सेव्य सो वेहु श्रीमट्ठुजी महाराजके मांथे बिराजत हैं. सो अब गांव गोपालपुरमें स्वरूप दोय बिराजत हैं.''**
>
> (पु.से.स्व.द.पृ.२४-२५).

ये यहां मुंबईके श्रीगोवर्धनेशजी महाराजके कालमें अपने वचनामृत प्रकट करते होनेके कारण श्रीबालकृष्णलालजी, श्रीमदनमोहनजी, श्रीनवनीतप्रियाजी और श्रीबड़े

मदनमोहनजीके बारेमें स्पष्ट कहते हैं **''सो ये चारों स्वरूप श्रीगोवर्धनेशजी महाराजके मांथे बिराजत हैं''** (वहीं पृ.२८-२९). अतः सिद्ध हो जाता है कि ऐसे कोई माधव भट्टके सेव्यस्वरूपकी हवेली न तो तब जतिपुरामें थी और न वहां ऐसा कोई निधिस्वरूप बिराजता था.

तनिक भी अपने बोलेपर डटे रहनेका पौरुष हो तो इस प्राकट्यवार्ताको सौ वर्षोंके भीतर जनमनेवाले अप्रामाणिक भ्रान्त और धूर्त गुसांई बालकोंका वाक्छल, अब चि.मन्मथ बावाको निश्छल वाणीमें स्वीकार लेना चाहिये. तब ही उनकी सिद्धान्तनिष्ठा और सिद्धान्तबोध का मानने लायक प्रमाण सारे पुष्टिजगत्‌को मिल पायेगा.

वैसे इन श्रीरमणलालजी महाराजसे डेढ़ सौ-दो वर्ष पहलेके गोस्वामिबालकोंके निधिस्वरूपोंके बारेमें वचनामृतोंकी भी हस्तलिखित प्रतियां मेरे संग्रहमें उपलब्ध हैं, इससे कुछ समझमें आता हो तो ही प्रत्युत्तर देनेका साहस करें! वर्ना और अधिक फ़ज़ीहत इस मुद्देपर गांवमें प्रकट हो जायेगी!

इस सारे धूतक, इस सारी सिद्धान्तवैपरीत्यकी वक़ालत, के भीतर भरे रहस्यके पर्देको चीरनेके लिये हालमें इतना ही पर्याप्त है. अतः सिद्ध होता है कि यह पक्ष हवेलीके व्यवसायमें लगायी गयी झूंटी पूंजी या निधि से मिलनेवाले संभावित धनलाभमें होनेवाली हानिके भयसे चि.मन्मथ बावा कर रहे हैं! इस तरह चिरकुटविधानकी प्राथमिक समीक्षामें ही यह सुस्पष्टतया देखा जा सकता है कि विधानकर्ता चि.मन्मथ बावाकी लाभपूजापरायणताकी गर्हित मनोवृत्तिके विवश इनकी सत्यनिष्ठा, स्वसेव्यस्वरूपनिष्ठा अथवा स्वधर्मनिष्ठा कितनी निम्नस्तरकी है. ऐसे व्यक्तिका पुष्टिजीव होना सन्दिग्ध लगता है क्योंकि महाप्रभुने तो पहले ही खुलासा दे रखा है कि **''भगवत्कृपापरिज्ञानं च मार्गरुच्या निश्चीयते''** (त.दी.नि.प्र.२।२५६). इस मूढ़ व्यक्तिकी रुचि, जबकि,

विधान (२)
MANMATH RAI Aug 12

नाथद्वारा तो श्रीमहाप्रभुजीके कालसे ही देवद्वार है. वार्तामें भी यह स्पष्ट आता है कि ''नाथद्वाराकुं देवद्वार राखे हैं'' तो जिस तरह जगन्नाथ बदरीनाथ रामेश्वर इत्यादि देवद्वारा हैं उसी प्रकार श्रीनाथजी पुष्टिमार्गको एकमात्र देवद्वार है और आप वैष्णव मुझे वार्तासाहित्यमेंसे यह बताईए कि श्रीमहाप्रभुजी श्रीगुसांईजी और अन्य आचार्य नहीं लेते थे तो आपका देवद्रव्यका पक्ष दृढ होता है.

चित्तको भगवत्प्रवण बनानेके उपायोंके स्थानपर चित्तको धनलाभप्रवण बनानेवाले जघन्याधिकारिओंके वक़ालत करनेकी चिरकुटविधानोंमें नग्ननृत्य कर रही है. इससे सभी सच्चे पुष्टिमार्गिओंको लज्जित होना पड़ता है!

अब इसके बाद दूसरे चिरकुटविधानकी समीक्षाके हेतु प्रवृत्त हुवा जा सकता है.

श्रीनाथजीके आगे भोग धरी सामग्री देवद्रव्य होती है कि यह मुद्दा जैसे यह स्वरूप देवद्वारमें बिराजमान है या नहीं? इस प्रश्नका समाधान खोजनेपर ही मिल सकता है. ऐसे ही जहां यह स्वरूप सेवार्थ बिराजमान है, वह स्थल स्वार्थप्रतिष्ठापित देवविग्रहका है या परार्थप्रतिष्ठापित देवविग्रहका? स्वार्थप्रतिष्ठापित होनेपर किसी परिवारिक गृह या देवालय में स्वार्थप्रतिष्ठापित अथवा समुदायविशेषके सामुदायिक गृह या देवालय में स्वार्थप्रतिष्ठापित है? इन प्रश्नोंका समुचित उत्तर मिल न पानेपर इस स्वरूपके समक्ष भोग धरी गयी सामग्री देवद्रव्य होती है कि नहीं इस समस्याका निराकरण भी शक्य नहीं. शास्त्राध्ययन भलीभांति न कर पानेवाले चि.मन्मथ बावा जैसा ही कोई *''नाथद्वारा तो श्रीमहाप्रभुजीके कालसे ही देवद्वार है. वार्तामें भी यह स्पष्ट आता है कि 'नाथद्वाराकुं देवद्वार राखे हैं' तो जिस तरह जगन्नाथ बदरीनाथ रामेश्वर इत्यादि देवद्वारा हैं''* ऐसा विवेकरहित विधान कर सकता है, अन्य कोई नहीं. इन बेवकूफोंको इतना भी होश नहीं है कि किसी वस्तुके स्वरूपज्ञापक लक्षण और स्वरूपघटक लक्षण के बीच क्या प्रभेद होता है? अतएव श्रीनाथजीके बिराजनेके स्थलके ऊपर शिखर-कलश-ध्वजाकी

दुहाई देनेमें अपनी बुद्धिके हिमालयके शिखरपर आरोहणकी सफलता समझ बैठते हैं. आज तो कोई भी फेशनेबल रेस्टोरां या होटल या धनिक व्यक्ति भी अपने आवासीय भवनके ऊपर शिखर-कलश-ध्वजा बनवा ले तो क्या ये मूढ़जन वहां चाइनीज़बर्गर थाइबर्गर या सिज़लर का प्रसाद लेने पहुंच जायेंगे! आधुनिक विद्यालयोंमें ऐसी फुडआईटम् खानेकी रुचि पनपानेवाले शिक्षणके कारण शास्त्राध्ययनमें इन्हें उकताहट होती है और ऐसे नये-नये शोखोंको फाईवस्टार होटलोंमें पूरा करनेका खर्च निकालनेको पुनः पुष्टिमार्गीय हवेलिओंमें बिकाउ प्रसाद और पुष्टिसौभाग्य की वक़ालत भी करनी पड़ती है! दुविधामें दोनों गये माया मिली न राम, न इधरके रहे न उधरके रहे!

ऐतिहासिक तथ्य तो यह है कि श्रीगोवर्धननाथजीका स्वरूप तो बहोत प्राचीन कालसे पञ्चरात्रतन्त्रोक्त देवप्रतिष्ठाकी विधिसे चतुर्वर्णाधिकारक भक्तोंके हेतु परार्थप्रतिष्ठापित देवालय (द्रष्ट. : विशोध.२।४८) था ही. अतएव वार्तामें भी आता है कि माध्वसम्प्रदायी श्रीमाधवेन्द्र यति वहां महाप्रभुके पधारनेसे पहले उपासना करते थे. महाप्रभुने तो पुनःप्रतिष्ठार्थ पुष्टिमार्गीय भावनाके अनुसार नन्दालयका नक्शा बनवाना चाहा पर नक्शेमें शिखर-कलश-ध्वजाका पुनःपुनः उभरना श्रीनाथजीकी परार्थप्रतिष्ठापित देवालयमें बिराजनेकी इच्छाका ज्ञापकलक्षण माना गया. स्वयं श्रीनाथजीसे पूछनेपर जगत्में अपनी पूजा बढ़वानेकी इच्छा प्रकट जनाई. अतः अपने पुष्टिभक्तिमार्गीय सिद्धान्तके अनुसार किसी पुष्टिमार्गीयके घरमें पधरानेका आग्रह छोड़ कर देवालयके स्वरूपघटक लक्षणरूप परार्थप्रतिष्ठावाले मर्यादामार्गीय देवालयमें पधराया. इन बेवकूफोंको इतनी छोटी सी बात भी समझमें नहीं आती कि **''दत्तापहारवचनं... भिन्नमार्गपरं मतं''** वचन यदि पुष्टिमार्गीय गृहसेवाके प्रकारमें लागू नहीं होता ऐसे ही अपुष्टिमार्गीय परार्थदेवालयके सेवाप्रकार भी लागू नहीं होगा तो लागू होगा कहां ? तो अब खुलासा करो कि यह भिन्नमार्ग कौन सा ? चि.मन्मथ बावा खुद कबूल कर रहे हैं कि *''जिस तरह जगन्नाथ बदरीनाथ रामेश्वर इत्यादि देवद्वारा हैं उसी प्रकार श्रीनाथजी पुष्टिमार्गको एकमात्र देवद्वार है''*. ऐसी स्थितिमें जगन्नाथजीका प्रसाद तो सभी गोस्वामी लेते ही हैं, विशेष कर प्रसाद लेनेका भी धंधा अच्छा चलता होनेसे उसके रेट फिक्स् करके वैष्णवोंको बस भर-भरके वहां कई गोस्वामिमहानुभाव ले जाते हैं! अतः

वहां भी भिन्नमार्ग तो परम्परामें दिखलायी नहीं देता! फिर किस भिन्नमार्गकी चर्चा हो रही है?

अतः सिद्ध होता है कि वैसे देवालयमें श्रीनाथजी बिराजते हों तो वह पुष्टिमार्गीय नहीं रह जायेगा. तिसपर अक्कलकी करामत देखने लायक है कि रामेश्वर भी गिना दिया है! वह तो श्रीरामचन्द्रजीद्वारा प्रतिष्ठापित शिवमन्दिर है. तब तो पुष्टिमार्ग तो दूर पर श्रीनाथजीके देवालयको वैष्णव सम्प्रदायका भी मानना मुश्किल हो जायेगा! वाह रे वाह! अपने-आपको सौ वर्षके भीतर जनमनेवाले गोस्वामिओंसे श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ माननेवालेकी! परार्थप्रतिष्ठापित देवालयोंमें भगवदाराधानार्थ प्रदत्त द्रव्य या सामग्री देवद्रव्य न हो कर देवाराधक अर्चक और उस अर्चक द्वारा आराधना करानेवाले देवदर्शनार्थ समागत भक्तजनोंके हेतु होता है. केवल देवविग्रहार्थ प्रदत्त द्रव्य या सामग्री 'देवस्व' या 'देवद्रव्य' कहलाती है. उसका अपने उपभोगार्थ अपहरण करनेवाला 'देवद्रव्यापहारी' देवलक हो जाता है. वैसा ही अपने निजी आराध्यके या आराधना के हेतु परिवारेतर जनोंका द्रव्य वापर कर प्रसादतया स्वयं उपभोग करनेवाला देवद्रव्योपभोगी देवलक होता है. यह सारा स्पष्टीकरण मैंने विशोधनिकामें किया ही है. या तो उन्हें पढ़ा नहीं गया है या मन्दमति होनेके कारण बात समझमें नहीं आयी होगी. अथवा जो वैष्णव जनता उसे पढ़ न पायी हो कमसे कम उसे तो ठगना मिलेगा ही. ऐसे कुछ हेतुओंसे निरस्त बातोंको भी दोहराते रहनेकी तुच्छ मानसिकता प्रकट कर ''विमर्शकारने गो.श्या.म.की प्रस्थापनाओंका खण्डन लिख दिया है'' कह कर बरगलाता है. अथवा पु.सि.सं.शि.के प्रतिपादनसे हम सहमत हैं कह कर बरगलाता है. यह कैसी छलना है? यह कैसा कपटनाटक खेला जा रहा है?

जब विशोधनिका जवाब इन नपुंसकोंसे मांगा जाता है, तब बातको फिर टल्ले चढा देते हैं कि गो.श्या.म. तो वयसा ज्येष्ठ हैं. हम उनके विरोधमें बोलनेका अविवेक नहीं कर सकते. केवल पूर्वाचार्योंके वचनोंका अभिप्राय बता सकते है. अरे मूर्खो तुम्हारे व्यक्तिगत अभिप्रायका मूल्य क्या है? महाप्रभुका सिद्धान्त क्या है यह बोल कर बताओ न ऐसा कहनेपर कहने लगते हैं महाप्रभुके वचनोंका जो अर्थ विमर्शकारने अथवा पु.सि.सं.शि.ने किया वह हमें मान्य है. परन्तु उनके अर्थघटनके तो अक्षर-अक्षरका विशोधनिकामें प्रत्याख्यान कर ही दिया गया है.

तब कहने लगते हैं उसके साथ हम व्यक्तिगत रूपमें सहमत नहीं हैं. परन्तु व्यक्तिगत तुम्हारी सहमति या असहमति कीमत क्या है? सच्ची स्वधर्मनिष्ठा या सच्चा शास्त्राध्ययन हो तो विशोधनिकामें उठाये गये मुद्दोंका जवाब दो. उसका जवाब यदि मन्दमति होनेके कारण सूझता न हो महाप्रभुको सिद्धान्ततया क्या अभिमत था इसका अपनी व्यक्तिगत समझके आधारपर कैसे दावा कर सकते हो? मेरा मतलब है कोई किसी धारणाको उचित या अनुचित तो व्यक्तिगत मान्यताओंके आधारपर मान सकता है. अपनी ही धारणाके, परन्तु, सच्ची होनेका दावा तो निराकरणका जवाब दिये बिना किया नहीं जा सकता. ऐसा दावा किस बलबूतेपर

करनेका दुःसाहस कोई कर सकता है? जिन स्थापनाओंका निरसन विशोधनिकाओंके तीनों भागोंमें हो चुका है. उसका जवाब देनेकी हिम्मत न हो तो फिर चुपचाप क्यों नहीं बैठते?

खैर, ऐतिहासिक तथ्य यह है कि सदु पांडे आदि किसी पुष्टिमार्गीयके उद्यत न होनेपर राधाकृष्णकुंडपर रहनेवाले देवीभक्त बंगालिओंको सेवा सोंपी गयी. इसमें ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा अनिवार्य नहीं मानी गयी थी, यह स्वयं इस तथ्यका प्रमाण है कि वह देवालय पुष्टिमार्गीय नहीं था. अन्यथा श्रीनाथजी समेत अन्य भी पुष्टिमार्गीय हवेलियोंमें ब्रह्मसम्बन्ध लिये बिना भी सेवाधिकार मान्य करनेपर किरीटभाईके सेवकोंके भी अधिकारको इन्कारा नहीं जा सकेगा. सभी श्रीनाथजीकी सेवा कर सकते हैं, ऐसी छूट देनी पड़ेगी, यदि जगन्नाथ बदरीनाथ या रामेश्वर के जैसा देवालय इसे मानते हौ तो. क्योंकि वहां तो किसीने ब्रह्मसम्बन्ध लिया कि नहीं पूछा नहीं जाता.

यदि प्रभुचरणने बादमें उसे अनिवार्य बनाया इसलिये इस नियमको आवश्यक मानना हो तो अक्षयतृतीयावाला पाटोत्सव बन्द करके प्रभुचरणके घर 'सतघरा'में बिराजे वही पाटोत्सव आज भी मनाया जाता होनेसे महाप्रभुद्वारा प्रस्थापित देवालयके स्वरूपको निरस्त मानना पड़ेगा.

यदि कहा जाये कि पधराये गये पुनः उसी मन्दिरमें सो पुनः वह देवालय ही स्थापित रहा. तो ईंट-चूना-पत्थरकी निर्मितिको देवालय मानना पड़ेगा. तब तो वही बात 'गृह'पदके अर्थपर भी लागू होगी 'गृह'पदका अर्थ गृहस्थी किया नहीं जा सकेगा. इसके अलावा पाटणके रुद्रमहालके जैसे अनेक मन्दिर, जिनका मुस्लिम समुदाय मस्जिदके रूपमें अब उपयोग कर रहा है, उन मस्जिदोंको या शिखर-कलश-ध्वजावाली आधुनिक होटलोंको भी मन्दिर मानना पड़ेगा.

देवालयका स्थापत्य उसका स्वरूपज्ञापक लक्षण होता है स्वरूपघटक नहीं. परार्थदेवालयका स्वरूपघटक लक्षण तो प्रतिष्ठापक पुरुषका भगवद्विग्रहको परार्थप्रतिष्ठापित करनेका संकल्प, तदनुरूप प्रतिष्ठाकर्म, तदनुरूप विहितरीतियोंका अनुष्ठान, निषिद्धरीतियोंका विवर्जन तथा किसी एक वंश या व्यक्ति का उस देवालयस्थ भगवद्विग्रहपर स्वत्व न होना माना गया है. इस बारेमें सारे प्रमाण विशोधनिकामें संकलित हैं. अतः इसी प्रभेदको लक्ष्यमें रख कर महाप्रभुने प्रारम्भमें स्वरूपज्ञापक लक्षणके सन्दर्भमेंह्व

''हमारे ठाकुरको मन्दिर सिखरबंद-धुजा-कलसको नाहीं नंदरायजीके घरकी नांई करो... नकसा तैयार भयो तब उही सिखरबंद-धुजा-कलस-चक्र ह्वै गयो. तब आचार्यजी जाने जो श्रीठाकुरजीकी इच्छा यह है जो जगत्में पूजाय बहोत (उभयविध पुष्टिसृष्टि और मर्यादासृष्टि के) जीवनको उद्धार करेंगे. सो देवालयकी (मर्यादामार्गीय) रीति यहां (श्रीनाथजीके सेवास्थलपर) राखनी उचित है (अर्थात् अन्यत्र नहीं).''

(८४ वै.वा.२४।१).

अब यदि इस देवालयके प्रकारको पुष्टिमार्गीय हम मानते हैं तो इस प्रकारके निर्वाहार्थ अनिवार्य अधिकारीका उद्धार होनेके बजाय बिगाड़ होनेकी बात क्यों कही गयी? बोलो यदि पुष्टिमार्गी भजनप्रकारके अधिकारीका बिगाड़ होना उसकी ध्रुवनियति हो तो ऐसे भजनप्रकारको श्रेष्ठ कैसे माना जा सकेगा? वार्तामें तो सुस्पष्ट शब्दोंमेंह्व

''पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछे जो 'महाराज कृष्णदासकी देह छूटि और अधिकारी बिना चलेगो नाहीं, सो हम कौनकों अधिकार देके बिगार करें?'... तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो 'हमहू कौन जीवको बिगार करें? कोई अधिकार लेयगो ताको बिगार होयगो... सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आवेगो.''

(८४ वै.वा.८४।१०).

हम देख सकते हैं कि बहोत जीवके उद्धारार्थ खोले गये देवालयके तो अधिकारीके बिगाड़ न होनेका भी उत्तरदायित्व न तो प्रभुचरण और न गोवर्धननाथजी स्वयं स्वीकारने तैयार हैं प्रत्युत जिस जघन्य अधिकारीका सृष्टिकी रचनाके समय ही प्रभुने बिगाड़ पूर्वनिर्धारित कर रखा हो वही ऐसे देवालयोंका अधिकारी या पक्षपाती होता है यह और आज्ञा कर दी है.

स्वयं प्रभुकी आज्ञाके वश किये गये शास्त्रनिषिद्ध गुरुवध जैसे कर्म जिन अर्जुन जैसोंको आज्ञा दी गयी हो उनकेलिये ही कर्तव्य होते हैं. यह न स्वीकारनेपर तो हर ठगे-लूटे-शोषित वैष्णवको गुसांई बालकके वधमें भी पाप नहीं लगेगा. निषिद्धकर्मानुष्ठानकी एकको दी गयी आज्ञा सभीके लिये यदि होती तो सद्यप्रसूताको सेवाकी आज्ञा भी स्वयं प्रभुने दी उसके आधारपर जननाशौचमें भगवत्सेवाकी अनुमति भी स्वीकारनी पड़ेगी

नागजी भट्टकी वार्तामें यह भी आता है कि उन्होंने तो सुस्पष्ट शब्दोंमें प्रभुचरणोंको देवालयस्थ श्रीगोवर्धननाथजीके बारेमें लिख भेजा कि **''सरसि कुशेशयमपि आस्वादयितुम् आगच्छतो अलिनो मार्गे यदि कनककमलपाने नासीत् तोषः किम् अन्येन''** (२५२ वै.वा.भा.प्र.१). तो ऐसी मुखरताके कारण उन्हें चि.बुलशिण्मथ बावाकी तरह परम्परामें किसीने न तो 'बुलशिट', न पापी, न बहिर्मुख, न भ्रान्त; और न धूर्त ही कहा एतावता इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वह प्रकार पुष्टिजीवोंको उपदेश्य साधनाप्रणालीका न हो कर मर्यादामार्गीय

प्रणालीका स्वयं श्रीगोवर्धननाथजीकी इच्छाके अनुसार प्रवृत्त हुवा प्रकार था. अतः वैसा ही प्रकार अभी भी मानना और मनवाना कोई चाहता हो तो उसे पुष्टिजीवोंके लिये अनभिप्रेत मर्यादामार्गीय प्रकार ही मानना पड़ेगा.

अथवा फाल्गुन वद सप्तमीके पाटोत्सवके अनुरूप श्रीनाथजीके सेवारीतिको गृहीयसेवाका या पुष्टिमार्गीय प्रकार मानना हो तो महाप्रभूपदिष्ट देवद्रव्यकी निषिद्धता श्रीनाथजीके प्रसादपर भी लागू होगी ही.

इस चर्चामें अपसिद्धान्तवादिओंकी गालीगलौचसे अधीर हो कर कतिपय सिद्धान्तवादिओंने सोनेकी कटोरीका प्रसंग श्रीनाथजीके साथ जोड़नेकी धांधल कर दी. वैसे वह अड़ैलमें घटित हुवा कहा जाता होनेसे निजगृहीय पुष्टिमार्गीय सेवाप्रकारसे जुड़ा घरुवार्ताका तीसरा प्रसंग है.

अतः यह विचारणीय हो जाता है किह्न

१.श्रीनाथजीका मन्दिर यदि गो.श्रीति.म.के निजी पारिवारिक गृहमें अनुष्ठेय सेवाका स्थल हो तो वहां परिवारेतर जनोंके द्वारा देवार्थ/देवसेवार्थ प्रदत्त द्रव्य/सामग्रीमें देवद्रव्यता आयेगी ही. अतः प्रभुचरणोक्त **''दाने हि न स्वविनियोगः''** (न.र.प्र.१)निषेधका पालन गलेपतित होगा ही. अतः महाप्रभूक्त **''देवद्रव्य खायगो सो पतित ह्वै जायेगो मेरो नाहीं कहावेगो''** (घरुवार्ता प्र.३) विधानके अनुसार देवद्रव्यसे बचनेके नियम भी अपरिहार्य होंगे.

२.यदि प्रभुचरणके सात आत्मजोंके वंशजोंके संयुक्तपरिवारके गृहमन्दिरमें श्रीनाथजीको बिराजता हुवा मानें तो गोस्वामिकुलेतर किसी भी व्यक्तिकी सेव्यार्थ या सेवार्थ भेट-सामग्री स्वीकारने पर देवद्रव्य होगा ही. तब तो पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंकी भेट-सामग्री भी स्वीकारी नहीं जा सकेगी. ऐतिहासिक दृष्टिसे तो वस्तुतः यही सोचा माना गया था. ज्येष्ठसंततीक्रममें श्रीगिरिधरजीके आत्मज दामोदरजीके

वंशजोंको संयुक्तपरिवारके कर्ता होनेकी हैसियतमें बरसके तीन सौ साठ दिनोंमें से केवल साठ दिन सेवाधिकारके दिये गये थे. शेष सभी गोस्वामिपरिवारोंके थे, टिकेतके साथ हुवे समझोताके अन्तर्गत. अब श्रीनाथजीपर अपने पारिवारिक स्वत्वके मिथ्या दावेके कारण गोस्वामितिलकायित होनेके मिथ्याप्रचारमें बाधा पहुंचनेके अलावा इस कल्पमें कोई कठिनाई नहीं. वैसे आज तो सरकारी न्यायालयने गो.ति.म.का एकाकी स्वत्व निरस्त कर श्रीनाथजीके मन्दिरको पुष्टिमार्गीयोंका सारे हिन्दुओंके लिये प्रतिष्ठापित मन्दिर माना है. तदनुसार गोस्वामितिलकायित अब वल्लभसम्प्रदाय या सभी वल्लभवंशजों के प्रमुख न रह कर केवल श्रीनाथद्वारामन्दिरके मुख्य शेबाईट कानूनके अनुसार रह गये है. मेरी अपनी आस्था है कि मैं तो अब भी उन्हें वल्लभसम्प्रदाय और समस्त वल्लभसम्प्रदायमें गुरुरूप वल्लभवंशज गोस्वामिओंका टिकेत ही स्वीकारना उचित मानता हुं. आजकी त्रुटि कल सुधर जाति हो इस प्रमुखपदका खतम होना अच्छी बात नहीं होगी. प्रमुखपदपर आसीन स्वयं मार्गको खतम करना चाहता हो तो वह पद बचे या जाय इसमें कोई अन्तर भी नहीं पड़ता.

३.क्योंकि ग़लत सलाहकारोकी सर्वनाशी सलाहके कारण स्वयं नि.ली.गो.ति.गोविन्दलालजीने स्वयं अपनी ओरसे स्वेच्छया न केवल श्रीनाथजीका स्वरूप प्रत्युत श्रीनवनीतप्रियाजीका भी स्वरूप सरकारको सोंप दिया था (दृष्ट. : मुखपृष्ठ आ.न्या.प्र.पु.सा.प्र.). वह मुझे लगता है पुष्टिमार्गके प्रधानपीठाधीशने अपने प्रधान होनेकी हैसियतमें आत्मघाती कदम उठाया था. उस हिमालयन ब्लंडरका दण्ड इन दोनों सेव्यस्वरूपोंको अथवा गो.ति.के अपारिवारिक शेष वल्लभवंशज गोस्वामिओंको अथवा पुष्टिमार्गीय वैष्णवजनताको भी देना उचित नहीं. अर्थात् सारी पुष्टिसृष्टिका संयुक्तदेवद्वार भी इसे माना जा सकता है. और तब इनके अलावा आज जिस तरह पुष्टिमार्गीय/अपुष्टिमार्गीयका विवेक रखे बिना सबकी भेट-सामग्री स्वीकारी जा रही है, वह निश्चयेन देवद्रव्य होती ही है.

४.महाप्रभुकालीन देवद्वारके रूपमें सभी हिन्दुओंका मन्दिर इसे मानना हो तो कमसे कम उसमें भी किसी अहिन्दुका प्रवेश और उसके

द्वारा प्रदत्त भेट-सामग्रीको बटोरनेपर संयम बरत कर, उसे देवद्रव्यके उपभोगके अपराधसे तो बचा जा सकता है.

५.अब क्योंकि प्रभुचरणके कालमें भी रसखान अलिखान जैसे मुसल्मानोंको पुष्टिमार्गमें दीक्षित किया गया था. उसकी खोटी दुहाई दे कर सर्वधर्मनिरपेक्ष मनुष्यमात्रका उद्धारक देवद्वार इसे मानना हो तो बुलशिण्मथरायकी तरह रसूलखान या रोबर्टसन् की भेट-सामग्री स्वीकारनेपर देवद्रव्य तो नहीं होगा परन्तु तब यह मन्दिर न तो पुष्टिमार्गियोंके लिये (षे़ी ंहश ग्गिंळारीसळी) न पुष्टिमार्गीय निवेदितात्माओंकी भेट-सामग्रीके विनियोग द्वारा (लू़ ंहश ग्गिंळारीसळी) चलता होनेके कारण पुष्टिमार्गीयोंका (ेष़ ंहश ग्गिंळारीसळी) भी रह नहीं रह जायेगा महाप्रभु और प्रभुचरण को पुष्टिमार्गके प्रवर्तक आचार्य माननेवाला ऐसी निष्ठुर वास्तविकताको भी कैसे स्वीकार पायेगा यही समझमें

मगर अगर श्रीमहाप्रभुजी और उनके वैष्णव पूर्वकालसे ही श्रीजीका प्रसाद यह जानते हुवे भी यह देवद्रव्य है अगर लेते आये हैं तो यह स्पष्ट हो गया कि ''न ग्राह्यम् इति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतं सेवकानां यथालोके व्यवहारः प्रसिध्यति''. एक बार प्रभुको निवेदित

नहीं आता देवद्रव्यके निषेधके बन्धनसे छटकनेको क्या हमें श्रीनाथद्वारास्थित पितापुत्रके प्राणादपि-प्रिय निधिस्वरूपोंके मन्दिरोंको ट्रैन या प्लेन अथवा होटल आदि सामाजिक सुविधाके प्रतिष्ठानोंकी तरह सर्वजनसाधारण सामाजिक भजनसुविधाके प्रयोजनवाले स्थल मान लेना निजाचार्यचरणोंके साथ क्या विश्वासघात नहीं होगा? ऐसे विश्वासघाती लोग आजकी रीतिसे धरी जाती सामग्रीको देवद्रव्य न मानते हों तो वह तो उसकी आड़में कुछ और ही अपना उल्लु पटानेका उद्देश्य उजागर कर रहे हैं.

चि.मन्मथ बावाकी अक्कलकी करामत यहां देखने लायक प्रकट हुयी है वह कहते हैं ''*श्रीमहाप्रभुजी और उनके वैष्णव पूर्वकालसे ही श्रीजीका प्रसाद यह जानते हुवे भी यह देवद्रव्य है अगर लेते आये हैं तो यह स्पष्ट हो गया कि 'न*

ग्राह्यम् इति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतं सेवकानां यथालोके व्यवहारः प्रसिध्यति''' इस मूढमतिको कोई समझाये तो कैसे समझाये कि जब महाप्रभुजी या गुसांईजी प्रसाद लेते थे या वैष्णवोंको भी लिवाते थे तब देवद्रव्य था नहीं, क्योंकि मर्यादामार्गीय रीतिके अनुसार जैसाकि स्पष्टीकरण कर चुके परार्थप्रतिष्ठापित देवालयमें देवाराधानार्थ लिया जाता परधन देवद्रव्य नहीं होता. जैसे आज भी तिरुपति जगन्नाथ आदि मन्दिरोंमें नहीं होता. वहां तो देवाराधनाके बजाय देवविग्रहार्थ यदि भेट-सामग्री ली जाती तो तभी देवद्रव्य बनती है. गृहाराधनामें, जबकि देवविग्रहार्थ स्वदत्त/परदत्त दोनों ही देवद्रव्य बनती होनेपर भी देवराधनार्थ देवाराधक परिवारकी भेट-सामग्री देवद्रव्य नहीं बनती. पर अपारिवारिक जनोंसे देवाराधानार्थ वस्तु सेवोपयोगी होनेपर ग्राह्य हो जाती है यह मार्गीय सिद्धान्त है. श्रीजीके अलावा यदि किसी हवेलीमें प्रसादकी राशिके बदले रसीद=रीसिप्टपर यदि नाम नाम श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी या फिर किसी गोस्वामी बालक या पूर्वाचार्य का हो तो भी वह राशि गुरुभेट सिद्ध होती है और वह भी देवद्रव्य नहीं माना जायेगा.

यदि भेट-सामग्री ली जाती है तो वह देवद्रव्य बनती ही है. इसके सारे प्रमाण विशोधनिकामें संकलित किये हैं. परन्तु कोई मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः होनेके कारण समझ न पाता हो तो उसमें महाप्रभु या प्रभुचरण अथवा उनके सेवकों का क्या दोष? तिसपर यह बकवाद तो सुनिये कि यह मूढ़मति कहता है कि ''देवद्रव्य जानते हुवे भी लेते थे इसलिये श्रीनाथद्वाराका प्रसाद देवद्रव्य नहीं होता''. धिक्कार है ऐसी मतिमन्दताको तब तो कल यह भी कहा जा सकेगा कि ''पुष्टिमार्गमें देवद्रव्यके उपभोग करनेमें किसी भी तरहका अपराध होता ही नहीं'' फिर महाप्रभुके निषेधवचनका क्या होगा? ''भिन्नमार्गपरं मतं'' वचनकी मांदमें छिपना भी सम्भव नहीं क्योंकि ''पतित ह्वै जायेगो मेरो नाहीं कहावेगो'' वचनमें पुष्टिमार्गको अभिप्रेत नहीं माननेपर तो मर्यादामार्गको महाप्रभुका मार्ग और पुष्टिमार्गको अवाल्लभ मानना पड़ेगा. ऐसा विधान कोई अन्नभक्षी मनुष्य कैसे कर सकता है? यह तो अपनी तृणभक्षिताको उजागर करने जैसी बात बन जाती है.

चि.मन्मथ बावा बकता है *''एक बार प्रभुको निवेदित वस्तु सेवामें उपयोगी होनेपर ग्राह्य बन जाती है यह मार्गीय सिद्धान्त है''* वाह रे वाह मार्गीय सिद्धान्तके

विशेषज्ञ यह तो बताओ कि तो सोनाकी कटोरी गिरवी धरकर जो सामग्री श्रीनवनीतप्रियाजीकी भोग धरी वह सेवामें उपयोगी हो गयी थी कि नहीं? उसे महाप्रभुने अग्राह्य क्यों कहा? सन्तदासने तो पराये किसीकी नहीं स्वयं अपनी ही सम्पत्ति अपने ही सेव्यस्वरूपको भेट धर दी, उसका प्रसाद भी नहीं लेते थे लगता है कि इस मूढ़जनने वह वार्ता पढ़ी

ही नहीं होगी. अन्यथा ऐसे अनर्गल विधानका साहस हो नहीं पाता क्यों सन्तदासने भिन्नमार्गपर मान कर उसका प्रसाद ले नहीं लिया? प्रसाद बेच कर गुरुभेटकी रसीद देनेकी बेवकूफीभरी बातके समान तो कल कोई यह भी कह सकता है कि शराबकी बोटल या ए.के. ४७ रायफल किसीको बेच कर रसीदपर महाप्रभु प्रभुचरण पूर्वाचार्य या गुरु का नाम लिखा हो तो वह गुरुभेट ही मानी जायेगी शास्त्रनिषिद्ध शराब या कानूननिषिद्ध हथियार धंधा नहीं. क्या सारी दुनियाको अपने जैसा ही बेवकूफ समझ रख्खा है? अरे बेवकूफ कभी पकड़ा गया तो जेलमें जाना पड़ेगा तिसपर यह तो होश ही नहीं है कि पक्वान्न बेचनेपर ब्राह्मण शूद्र बन जाता है (ऐसे मूढने शास्त्र न पढ़े हो तो क्षम्य है पर कमसे कम विशोधनिका तो पढ़ी होती). केवल ओरकुटपर सर्फ करना क्या आ गया उससे अपने-आपको सकलशास्त्रनिष्णात मान लेनेकी भ्रान्तिमें डूब गया कोई शास्त्र व्यवस्थित पढ़ा हो तो बुद्धि चलेगी न सौ वर्षके भीतरके गोस्वामिबालकोंके वचन प्रमाण मानने नहीं है और सारी बातें चि.पु.सि.सं.शि. और विमर्श की चोर-चोर कर ऐसे बकते रहना है मानों ये ग्रन्थ पढ़ रख्खे हों

यदि सचमुचमें श्रीनाथजीमें इतना सुदृढ़ भाव हो और श्रीजीके प्रसादको अपने इतने अधिक सौभाग्यका विषय मानता हो तो वापी या अन्यत्र हवेली खोलनेकी आवश्यकता क्या है? क्यों श्रीनाथद्वारा जा कर मुखिया या भीतरिया या बालभोगिया बननेकी परचारगी नहीं करता? प्रसादकी पत्तल तो मिलेगी कि नहीं जो भी गोस्वामी नई-नई व्यावसायिक हवेली खोल कर श्रीनाथजीके प्रसादकी महिमा गा रहे हैं, उसमें हेतु इनका अपनी हवेलीके प्रसाद बेचनेकी चाण्डालवृत्तिकी वकालतका है. यदि न हो तो सामने आओ चेलेंज स्वीकारो अपनी हवेली बन्द कर श्रीनाथद्वारामें बस कर दिखाओ तभी सही बातका पता चलेगा कि वाक्पति श्रीवल्लभके तुम कितने सच्चे वंशज हो अरे स्वयं गो.ति.महाराज वहां जब रहना

नहीं चाहते. उनके चि.विशाल बावाको श्रीजीके प्रसादके बजाय मेक्सिकन चाईनीज़ सामग्री अधिक सुहाती है, यह उनकी ओरकुटकी प्रोफाइलमें स्वयं यह देखा जा सकता है. अपनी पर्सनालिटीको वे 'सेक्सी' कहना पसन्द करते हैं श्रीजीके भक्त होनेके स्थानपर, वह भी वाल्लभ सिद्धान्तके सत्संगके लिये. तो सेक्सुअल सत्संग ही उद्देश्य लगता है, श्रीनाथजीकी भक्ति या भाव का नहीं खैर, यह उनकी अपनी चोइस हो सकती है पर चि. बुलशिण्मथराय यदि सच्चा वल्लभवंशजात हो तो श्रीनाथद्वारामें क्यों नहीं जा बसता? क्यों यहां-वहां हवेली खोलनेके चक्कर चला रहा है? मुंबईमें हवेली खोल कर व्यवसाय चलानेको लार टपकानेवाले हमारे गुसांइओंका श्रीनाथजीके साथ लेना-देना क्या है? रसीदपर गोस्वामी या पूर्वाचार्य का नाम तो सरकारके ट्रस्टएक्टके चंगुलसे छटकनेका एक फ्रॉड् है. स्टिंग ऑपरेशन करनेवाले मिडियाकी निगाहमें आनेपर ऐसा भंडा फूटेगा कि सारी गुरुभेट भूल जानी पड़ेगी. यदि इसके कुंवर लाडिले श्रीगोवर्धनेशजी महाराजके ठाकुरजी हों तो उनके तो सभी ठाकुरजी और सम्पत्ति को हाइकोर्टने पब्लिक ट्रस्ट करार दिया है. सो पब्लिक ट्रस्टके ठाकुरजीको चोरी-छिपे रखनेके विरोधमें एक जनहित फरियादकी याचिका अगर मैं ही दायर कर दूं, चेरीटी कमिश्नरके यहां, तो कुंवर लाडिलेकी भक्तिके पाखंडका नशा अभी उतर जायेगा. यदि इस प्रत्युत्तरकी प्रतिलिपि भी मैं चेरीटी कमिश्नरके यहां कम्पलेनके रूपमें भिजवा दूं दस्त छूट जायेगी कुंवर लाडिलेके धंधा करनेवालेको.

भेट धरनेवालेने भेट यदि ठाकुरजीके लिये ही धरी हो तो कानूनी चंगुलसे बचनेको गो.बा.के नामपर फाड़ी गयी रसीद 'गुरुभेट' कैसे कही जा सकती है? शास्त्रप्रमाण दिखाओ सौ वर्षके भीतरके गो.बा.के वचन या बरताव नहीं. एक सभ्य नागरिकके लिये ऐसा कृत्य कानूनन कैसे जायज हो सकता है? न तो शास्त्र और न कानून ही लेन-देनके व्यवहारमें इकतरफा मान्यताको प्रामाणिक माना जाता है.

अरे स्मगलर, जो रसीद नहीं देता, वह भी माल तो सच्चा ही देता है. इन धनांध धनलोलुप धर्मगुरुओंकी बुद्धिकी भ्रष्टता तो देखो कि माल भगवान्के प्रसादका बेच कर रसीद गुरुभेटकी फाड़ कर दुनियाको, कानूनको, श्रद्धालुजनताको; और सर्वोपरि पुष्टिधर्मसम्प्रदायको ठगनेमें अपना बड़ा पुरुषार्थ समझ बैठे हैं रसीद

जिस व्यक्तिके नामकी फाड़ी गयी उसकी समझ क्यों प्रमाण नहीं? क्यों रसीद देनेवालेकी अर्थलोलुपता ही प्रमुख मानते हैं? द्रव्य देनेवाला यदि ठाकुरजीकी सेवा मनोरथ या प्रसाद पानेकी इच्छासे द्रव्य दे रहा है, तो या तो लेना ही नहीं चाहिये, उसकी भ्रमणाके अनुरूप सेवा मनोरथ या प्रसाद बेच नहीं रहे हौ तो. और यदि अपने सेव्यकी सेवा या प्रसादी वस्तु बेच ही रहे हो तो उसकी रसीद क्यों नहीं देते? पुष्टिमार्गीय हवेलीके महाराजोंका भगतिका प्राईवेट धंधा, प्राईवेट प्रोस्टीट्यूशन्की तरह अनैतिक असमाजिक या गैरकानूनी अपराध न हो तो, जिस हेतु देनेवालेसे द्रव्य लिया जाता हो उस हेतुकी रसीद उसे क्यों नहीं देते?

देवसेवा या देवप्रसाद के विक्रयद्वारा चलती हवेलीका क्या कोई रुपया इकठ्ठा करनेवाला पगारदार नौकर क्या ठाकुरजीके रहते हवेलीका गु.बा. या मालिक हो सकता है? यदि नहीं तो कारण दो हो सकते हैं : १.या तो ठाकुरजीको गु.बा.अपने धन कमानेका साधन जडमूर्ति मानता होना चाहिये २.गु.बा.ठाकुरजीको बालभावसे अपनी व्यवस्था करनेमें असमर्थ और स्वयंको उनका गार्जियन मानता होना चाहिये. १.में वहां दर्शन/प्रसाद लेनेकी गरिमा खण्डित हो गयी. दूसरेमें हां, उसपर यदि श्रीठाकुरजीका नाम या श्रीठाकुरजीके ट्रस्टका नाम हो तो वह देवद्रव्य माना जायेगा. और उसका उपभोग ठीक नहीं है. फिरभी श्रीजीका प्रसाद तो हर कीमतपर हर हालातमें उपयुक्त उपयोगी और उत्तमोत्तम है और उसे लेनेसे मार्गीय सिद्धान्तका कोई उल्लंघन नहीं होता है. ये मैं समझा हुं अपने वांचन और स्वाध्याय से. नकि किसीके चटपटे व्यंगभरे प्रवचनोंसे आप समझ रहें हैं न मेरा इशारा किस तरफ है?

बालककी सम्पत्तिको उसका गार्जियन् यदि खा सकता हो तो गु.बा.की सम्पत्ति वैष्णवट्रस्टी क्यों नहीं खा सकते?

चि.मन्मथ बावाका कहना है कि *''श्रीठाकुरजीका नाम या श्रीठाकुरजीके ट्रस्टका नाम हो तो वह देवद्रव्य माना जायेगा. और उसका उपभोग ठीक नहीं है''* पर मैं यह पूछना चाहुंगा कि निवेदित वस्तु प्रभुके सामने सेवामें उपयोगी होनेसे ग्राह्य होनेका मार्गीय सिद्धान्त यहां क्यों भुला दिया गया?

एक कारण देवलकोंकी सनातन दुविधावाला यह हो सकता है किह्न

१.ठाकुरजी या ठाकुरजीके नामवाले ट्रस्ट की रसीद फाड़नेपर नाथद्वारा और बड़े मन्दिर की हवेलियोंपर सार्वजनिक ट्रस्ट एक्ट लागू हो गया. और बड़े मन्दिरमें इनके पितामह नि.ली.माधवरायजीकी बेइज्जती, स्वयं उनके द्वारा मनोनीत ट्रस्टीने कर दी कि जिसके कारण अपमानित हो कर नाशिक गये और वहां मासिव हार्ट-एटेक आ जानेके कारण चल बसे वापीमें खोली गयी या यहां मुंबईमें खोली जानेवाली हवेलियोंमें कहीं वैसी घटनाकी पुनरावृत्ति न हो जाये उसका भय इस आत्मघाती मूढ़मतिको लगता होना चाहिये

यह यदि सच हो तो खुल कर कबूल करना पड़ेगा कि यह मार्गीय सिद्धान्त नहीं परन्तु चि.मन्मथ बावामें व्यावसायिक हवेली चलानेके अलावा अन्य किसी भी आत्मगौरवपूर्ण सिद्धान्तशुद्ध अर्थोपार्जन कर पानेकी योग्यता नहीं है.

२.दूसरा कारण यह हो सकता है कि स्वयंका न तो किसी प्रकारका सिद्धान्तग्रन्थोंका स्वाध्याय है और न लेशमात्र समझ ही विमर्शकार और चि.पु.सि.सं.शि.से फोनपर पूछ लिया होगा कि इस युक्तिका क्या जवाब देना और उन्होंने *विधवाके पांय सुहागिन लागी... 'हो जा भैना मो जैसी'* आशिर्वाद दे कर इस मूढ़मतिको आश्वस्त कर दिया होगा

इसे ज्ञात हो कि नहीं पर तथ्य यह है कि षष्ठपीठके मिथ्या दावेदार होनेके कारण स्वयं विमर्शकारने चि.पु.सि.सं.शि.को वह काशीमें गोद गये अपने अनुज गो.श्याममनोहरजीको षष्ठपीठाधीश न मान ले उसकी धांधलमें पूरी बात पढ़े-सुने बिना गो.ति.म.हस्ताक्षरके साथ पदवी तो प्रदान कर दी. उसके पक्षग्रहणके आधारपर तो पदवीदाता स्वयं देवलक सिद्ध हो रहे थे. सो विमर्श लिख कर जानके पड़ गये लालेसे छटकना पड़ा वैसे विचारणीय सिद्धान्तदृष्ट्या यही है कि सेवामें निवेदित होनेके बाद तो सामग्री यदि ग्राह्य प्रसाद बन जाती हो ट्रस्ट

ठाकुरजीके नामका हो या न हो उससे अन्तर क्या पड़ता है. इस मूढ़मतिके सौ वर्ष पहलेके किस पूर्वाचार्यके कौनसे वचन हैं? जरा उद्धृत तो करके दिखलाये. कहीं अनर्गल प्रलाप करनेमें ही कोई महारत तो हासिल नहीं कर रखी है वार्तासाहित्यकी

शेखी बघारनेवाला वार्तासाहित्यमें ऐसा प्रसंग निकाल दिखलाये कि किस पुष्टिप्रभुका प्रसाद महाप्रभु या प्रभुचरण ने कब और किसे बेचा और वह भी ऐसी झूंटी रसीद खरीदनेवालेके नामकी फाड़ कर

यह बेवकूफ शेखी बघार कर पूछ रहा है कि *''ये मैं समझा हुं अपने वांचन और स्वाध्याय से. नकि किसीके चटपटे व्यंगभरे प्रवचनोंसे आप समझ रहें हैं न मेरा इशारा किस तरफ है?''* मगर मैं कहना चाहुंगा कि श्रद्धाविशुद्धबुद्धिके साथ ग्रन्थ पढ़े होते तो यह फज़ीहत काहेको होती? रही बात ''इसका इशारा किस तरफ है'' की तो न तो यह मेरे प्रवचनोंमें कभी आया और न जैसा कि दावा कर रहा है इसे प्रवचनोंकी केसेट सुननी या पानी या पुस्तकें पढ़नी आवश्यक होनी चाहिये. तब यह इशारा मेरी तरफ तो हो नहीं सकता तब किसकी तरफ हो सकता है?

हां, लो बराबर मौकेपर मुझे एक बात याद आगयी इसका इशारा इसके पिता गोस्वामी नीरजकुमारके मोटामन्दिरके बगीचेमें 'पुष्टिअस्मिता' गीतोंपर रखे डांडिया रासके गरबेमें जो सामने रामलीलाकी तरह एक देवलकका पुतला खड़ा कर जलाया गया था, उस बारेमें इसके पिताका प्रवचन वस्तुतः बहुत ही चटपटा व्यंगभरा था और कदाचित् ऐसे पिताके पुत्र होनेमें लज्जा अनुभूत होती होनेसे, मेरे अनुजको अपना धर्मपिता मान कर, मेरे पितृचरणको अपना धर्मपितामह बना कर, अपनी लज्जाको शिथिल बनानेको ही इसके औरस पिताके चटपटे व्यंगभरे प्रवचनोंपर बड़ा ही चटपटा व्यंग यह कर रहा है

(शेष आगामी प्रसूनोंमें)